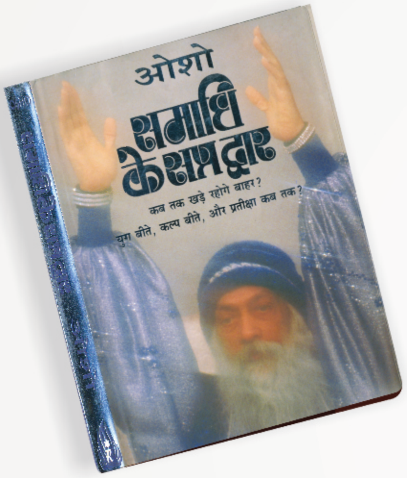

समाधि के सप्त द्वार

आज से सौ वर्ष बाद, जब पूर्वाग्रहों की ग्रंथियां पिघल चुकी होंगी, तब ओशो जैसे सत्पुरुष हमारे बीच में थे, इस बात का अचंभा अगर किसी को हो तो यह कोई आश्चर्य की बात न होगी। यह लिखते हुए, जैन धर्म, बौद्ध धर्म, सूफीवाद पर ओशो की अनेकों किताबें मेरे सामने रखी हैं। कबीर, मीरा, नानक, फरीद आदि संत-कवियों की मदिरा पिलाने वाले उनके अमृत-कलश भी मेरे सामने हैं जिनमें से मैंने छक कर पीया है। खलील जिब्रान और नीत्शे के ग्रंथों की उनकी समालोचनाएं सामने की अलमारी में स ` झ ा ं क रही हैं। ओशो किसी भी विषय को उसके केवल ऊपरी तल से ही स्पर्श नहीं करते; वे उसके अंतस्थल में आत्यंतिक गहराई तक उतर जाते हैं। जब वे कबीर की बात करते हैं तब उनके सामने केवल कबीर ही होते हैं; वे कबीर में ही खो जाते हैं। वे संत कवि दरिया साहब की बात करते हैं तब दरियावाणी ही उनके निर्विचार के केंद्र में आकर बस जाती है। वे मैडम ब्लावट्स्की के 'सैवन पोर्टल्स आफ समाधि (समाधि के सप्त द्वार) की चर्चा करते हैं तब मैडम ब्लावट्स्की उनकी चेतना के केंद्र पर होती है। जो कुछ भी उनको छू जाता है, उनके हृदय की गहराई में भीतर चला जाता है और उनके अमृत का संस्पर्श लेकर स्वतः स्फूर्त अभिव्यक्त होता है।

प्रस्तुत पुस्तक के संबंध में ओशो कहते हैं : 'मैंने यह किताब जानकर चुनी है। जिनकी हैसियत कुरान और बाइबिल की हो उस कोटि की किताबें इन सौ, दो सौ में नहीं लिखी गई हैं। जो भी ऐसी दो-चार किताबें हैं, उनमें से एक यह 'समाधि के सप्त द्वार' है। मैंने इसलिए इसको चुना है कि ब्लावट्स्की ने आकाश की संहिता को पढ़ने में जरा सी भी भूल नहीं की है।'

ओशो ब्लावट्स्की की किताब के साथ तदरूप होकर बात कर रहे हैं। वे 'महावीर : मेरी दृष्टि में' बोलते समय जितने महावीर के साथ या जरथुस्त्रा पर बोलते समय जितने नीत्शे के जरथुस्त्रा के साथ एकरूप होते हैं, उतने ही वे ब्लावट्स्की के इस ग्रंथ के साथ एकरूप हैं। इसका कारण स्पष्ट है। ओशो पल-पल जीते हैं। बीता हुआ कल अथवा आनेवाला कल उनके लिए असंगत है। वे वर्तमान के जीवंत क्षण की ही महिमा गाते हैं। जिसका अध्ययन चल रहा हो वही ग्रंथ अर्जुन के लक्ष्य की भांति उनके सामने होता है, शेष सब लुप्त हो जाता है। वे कबीर के किसी पद के बारे में बात करें उससे पहले ही वह पूरा पद हमारे सामने होता है। उसमें पुनरावर्तन भी आते हैं; श्रोता के मन में वही पद गुंजित होता रहता है। उसी शैली से यहां पर ब्लावट्स्की का अनूदित ग्रंथ हमारे सामने प्रस्तुत है। ग्रंथ को अलग से पढ़ उसकी अलोचना करने वाली यह बात नहीं है। ओशो जब भी किसी सूत्र, पद, ग्रंथ की बात करते हैं तब उस सूत्र का अलग अस्तित्व नहीं रहता। वह सूत्र, उसका मर्म और ओशो की वाणी, तीनों पृथक न हो सकें, इस तरह से उनका अंतर्आलिंगन हो जाता है। आर्य पथ पर स्रोतापन्न नदी में प्रविष्ट हो गये हैं—इस प्रकार से प्रारंभिक यात्रा नदी के उस पार की झलक देख लेने वाले बोधिसत्व तक विस्तारित होती है। ये सारे सोपान रसास्वाद लेने जैसे हैं। बोधिसत्व को शरीर में बांध रखने के लिए शरीर की किसी वासना को पकड़ना जरूरी है। जिस क्षण शरीर की यह आखिरी वासना तिरोहित हो जाती है, उसी क्षण बोधिसत्व शरीर के पार हो जाते हैं। कितने लोग नदी में उतरने को तैयार हैं? उतरने के बाद दूसरे किनारे पर पहुंचने वाले कितने हैं?

ओशो ने उपसंहार में एक अद्भुत बात कही है : 'एक ही जगह पर अनवरत खुदाई करते रहें तो जल मिलता है।'

'ध्यान भीतरी खुदाई है, जो निरंतर चलनी चाहिए।' यह ध्यान का मार्ग, स्रोतापन्न को नदी के उस पार ले जाने वाला मार्ग, बोधिसत्व को शरीर से बांध रखने वाली अंतिम वासना से मुक्ति देने वाला पथ, इस पथ के माध्यम से ओशो उद्बोधित कर रहे हैं—इन अमृत वचनों में, उनके क्षण-क्षण में जीए जाने वाले जीवन के इस क्षण में भी।

—श्री हरीन्द्र दवे

(यह पुस्तक ओशो वर्ल्ड गैलेरिया में उपलब्ध है)